[2019] 17 एससीआर 995

मेसर्स दीप इंडस्ट्रीज लिमिटेड

बनाम

तेल और प्राकृतिक गैस निगम लिमिटेड और अन्य

(सिविल अपील संख्या 9106 / 2019)

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार

आर/विशेष सिविल आवेदन संख्या 9305/2018 में गुजरात उच्च न्यायालय, अहमदाबाद के निर्णय और आदेश दिनांक 25.07.2018 से

भारत का संविधानः अनुच्छेद 227 – उच्च न्यायालय द्वारा मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 के तहत निर्णीत किए गए मामलों में अनुच्छेद 227 के अन्तर्गत क्षेत्राधिकार का प्रयोग । तथ्यों पर – अपीलार्थी द्वारा पुराने [सेकेण्ड हैण्ड] उत्पाद की आपूर्ति के कारण प्रत्यर्थी द्वारा अनुबंध की समाप्ति मध्यस्थता कार्यवाही की शुरुआत । इस दरम्यान प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी को दो वर्ष की अवधि के लिए काली सूची में डाल दिया । अपीलार्थी ने मध्यस्थ के समक्ष प्रतिबंध के खिलाफ धारा 17 के अन्तर्गत आवेदन दायर किया । अपीलार्थी ने धारा 16 के अन्तर्गत भी आवेदन दायर किया जो खारिज कर दिया गया था । तत्पश्चात्, मध्यस्थ द्वारा धारा 17 के अन्तर्गत आवेदन का निष्पादन इस शर्त के साथ किया गया कि दो साल का प्रतिबंध केवल तभी लागू होगा यदि अपीलार्थी अंतिम मध्यस्थता कार्यवाही अंततः हार जाता है । मध्यस्थ का यह आदेश अपील में बरकरार रखा गया । धारा 37 के अन्तर्गत दायर की गई पहली अपील सिविल कोर्ट द्वारा खारिज कर दिया गया । प्रत्यर्थी द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 227 के अन्तर्गत याचिका दायर किया गया । उच्च न्यायालय ने याचिका स्वीकृत की । अपील में अभिनिर्धारित – अनुच्छेद 227 एक संवैधानिक प्रावधान है जो अधिनियम की धारा 5 के गैर अवरोधक खंड से अप्रभावित रहता है । यद्यपि अधिनियम की धारा 37 के अन्तर्गत प्रथम अपील की स्वीकृति या खारिज संबंधी निर्णयों के खिलाफ अनुच्छेद 227 के तहत याचिकाएं दायर की जा सकती हैं, फिर भी उच्च न्यायालय, साविधिक नीति को ध्यान में रखते हुए इसमें हस्तक्षेप करने में अत्यंत सतर्क रहेगा, ताकि हस्तक्षेप उन पारित आदेशों तक सीमित रहे जिनमें अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का स्पष्ट अभाव हो । उच्च न्यायालय ने, जैसा मध्यस्थ द्वारा धारा 16 के तहत आवेदन में किया गया था, ठीक उसी मामले में जाकर इस वैधानिक योजना को उलट दिया । अनुच्छेद 227 के अन्तर्गत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले न्यायालय के लिए पक्षकारों के बीच विवादों के सामान्य घेरे में प्रवेश करना उपयुक्त नहीं है, जहाँ केवल क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटियों को ठीक किया जा सकता है । अनुबंध तथा प्रतिबंध आदेश का संदर्भ देना और बाद में विधि के अनुपालन एवं अंत में स्थगन आदेश जारी करना माध्यस्थम् न्यायाधिकरण के क्षेत्राधिकार के भीतर था । और अधिक, केवल इसलिए कि, पहली अपील का निपटारा उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय द्वारा किया गया था, अनुच्छेद 227 की याचिका पर विचार नहीं किया जाना चाहिए था। मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 – धाराएं 5, 37 ।

मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996: नीति और उद्देश्यः अभिनिर्धारित – मध्यस्थता मामलों का त्वरित निष्पादन अधिनियम की नीति है । अधिनियम का उद्देश्य न्यायिक हस्तक्षेप को न्यूनतम करना है, जिसे अधिनियम के तहत निर्णित कार्यवाही के खिलाफ अनुच्छेद 227 के तहत याचिका का निष्पादन करते समय हमेशा सर्वोपरि रखा जाना चाहिए।

अपील को अनुमति देते हुए, न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित

1.1 मध्यस्थता अधिनियम एक विशेष अधिनियम है और मध्यस्थता से संबंधित एक स्व–निहित संहिता है। अधिनियम की नीति मध्यस्थता मामलों का त्वरित निष्पादन है । अधिनियम का उद्देश्य न्यायिक हस्तक्षेप को न्यूनतम करना है । जब अधिनियम के तहत निर्णित कार्यवाही के खिलाफ अनुच्छेद 227 के तहत याचिका का निष्पादन किया जा रहा हो तो इस उद्देश्य को हमेशा सर्वोपरि रखा जाना चाहिए । [पैरा 14,17]

एस. बी. पी. एंड कंपनी बनाम पटेल इंजीनियरिंग लिमिटेड और अन्य[1] – **अनुगमित** ।

फ्यूर्स्ट डे लॉसन लिमिटेड बनाम जिंदल एक्सपोर्ट्स लिमिटेड[2] – **संदर्भित** ।

1.2 मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 29ए, जिसे संशोधन अधिनियम, 2016 द्वारा जोड़ा गया था, द्वारा एक समय सीमा बनाई गई थी जिसके भीतर मध्यस्थता निर्णय दिए जाने चाहिए, अर्थात्, माध्यस्थम् न्यायाधिकरण के संदर्भ में प्रवेश करने की तारीख से 12 महीने की अवधि। जहां तक धारा 34 के आवेदनों का संबंध है, उसी संशोधन द्वारा जोड़ी गई धारा 34 (6) के अनुसार, इन आवेदनों का शीघ्रता से निष्पादन किया जाना चाहिए, और किसी भी स्थिति में, उस तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर जिस दिन उप–धारा (5) में निर्दिष्ट नोटिस दूसरे पक्षकार को दिया जाता है । उक्त वैधानिक प्रावधान को देखते हुए और इस तथ्य को देखते हुए कि 1996. के अधिनियम ने पिछले तीन अधिनियमों को निरस्त कर दिया था ताकि इसके अंतर्गत आने वाले सभी मामलों का तेजी से निपटारा किया जा सके, यह स्पष्ट है कि अधिनियम की वैधानिक नीति के अनुसार न केवल मध्यस्थता कार्यवाही के निपटारे के लिए समय सीमा निर्धारित की गई है, बल्कि धारा 34 के संदर्भों पर निर्णय लेने के लिए भी समय सीमा निर्धारित की गई है। [पैरा 10,11]

भारत संघ बनाम मेसर्स वरिंदेरा कॉन्स्ट० लिमिटेड[3] – **संदर्भित** ।

1.3 धारा 5 में निहित गैर अवरोधक खंड सबसे महत्वपूर्ण है जिसमें कहा गया है कि किसी अन्य कानून में कुछ भी निहित होने के बावजूद, मध्यस्थता अधिनियम के भाग 1 के तहत उत्पन्न होने वाले मामलों में, सिवाय इसके कि इस भाग में ऐसा प्रावधान किया गया हो , कोई भी न्यायिक प्राधिकार हस्तक्षेप नहीं करेगा । धारा 37 केवल कुछ निर्णयों और आदेशों के खिलाफ पहली अपील का एक संकुचित अधिकार प्रदान करती है, और कुछ नहीं। इसके अलावा, वैधानिक आदेश में एक प्रयास है, और दूसरी अपील दायर किए जाने का निषेध भी । [पैरा 12]

1.4 इसमें कोई संदेह नहीं है कि यदि धारा 37 के तहत अपील में पारित आदेशों के खिलाफ संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत याचिकाएं दायर की जाती हैं तब संपूर्ण मध्यस्थता प्रक्रिया रुक जाएगी और कई वर्षों तक फलीभूत नहीं होगी । साथ ही यह भी नहीं भूला जा सकता कि अनुच्छेद 227 एक संवैधानिक प्रावधान

है जो अधिनियम की धारा 5 के गैर अवरोधक खंड से अप्रभावित रहता है । इन परिस्थितियों में, ध्यान देने योग्य बात यह है कि हालाँकि अधिनियम की धारा 37 के तहत दायर पहली अपील द्वारा स्वीकृति या खारिज करने वाले निर्णयों के विरुद्ध अनुच्छेद 227 के तहत याचिकाएँ दायर की जा सकती हैं, फिर भी उच्च न्यायालय, साविधिक नीति को ध्यान में रखते हुए इसमें हस्तक्षेप करने में अत्यंत सतर्क रहेगा, ताकि हस्तक्षेप उन पारित आदेशों तक सीमित रहे जिनमें अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का स्पष्ट अभाव हो । [पैरा 13]

निवेदिता शर्मा बनाम सेल्युलर ऑपरेटर्स एसोसिएशन ऑफ इंडिया और अन्य[4] – **संदर्भित**

1.5 दिनांक 09.05.2018 को मध्यस्थ द्वारा धारा 16 का आवेदन खारिज कर दिया गया था, जिसमें काफी हद तक वही विवाद थे जिन्हे उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया । अधिनियम की धारा 16 की कवायद वह है कि यदि इस प्रावधान में एक आवेदन खारिज किया गया है, वहॉ अपील का प्रावधान नहीं है और इस तरह खारिज हुए आवेदन को दिए जाने वाली किसी चुनौती को अंतिम पंवाट के पारित होने तक का इंतजार करना होगा और उस स्तर पर इसे धारा 34 के तहत उठाया जा सकता है । वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय ने मध्यस्थ द्वारा धारा 16 में सुने गए आवेदन के समान ही मामले को सुनकर, इस वैधानिक योजना को पलट दिया और यह निर्णय लिया कि दो साल का प्रतिबंध 02.11.2017 को जारी मध्यस्थता के लिए नोटिस का हिस्सा नहीं था, उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष सीधे तौर पर मध्यस्थ के द्वारा धारा 16 के आवेदन को ख़ारिज करने के निष्कर्ष के विपरीत है । केवल इसी कारण से, अपील के अन्तर्गत निर्णय को अपास्त किए जाने की जरूरत है। दूसरी स्थिति में भी, अपील के तहत निर्णय मामले के गुण–दोष पर आधारित है और इसमें कहा गया है कि ठेकेदार और उसके निदेशकों को "छुट्टी पर" रखा जाना समझौते की समाप्ति का एक परिणाम नहीं है । यह पूरी तरह से गलत है क्योंकि ऐसा केवल समझौते की समाप्ति से उत्पन्न हुआ और दिनांक 18.10.2017 को कारण बताओ नोटिस द्वारा दो साल का प्रतिबंध लगाना प्रस्तावित था । अन्यथा भी, अनुच्छेद 227 के अन्तर्गत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले न्यायालय के लिए पक्षकारों के बीच विवादों के सामान्य घेरे में प्रवेश करना उपयुक्त नहीं है, जहाँ केवल क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटियों को ठीक किया जा सकता है। यह बताना ग़लत है कि प्रतिबंध आदेश एक सामान्य अनुबंध नियमावली के तहत पारित किया गया था न कि समझौते का खण्ड 18, यह इस कारण से भी ग़लत होगा कि सामान्य अनुबंध नियमावली का यह मतलब नहीं है कि ऐसा आदेश कार्यकारी शक्ति का आह्वान करने वाले एक प्रशासनिक आदेश द्वारा जारी किया गया था, लेकिन यह अनुबंध से ही निकले केवल एक आदेश के रूप में था । इसके अलावा यह कहना कि, अधिकार क्षेत्र के रूप में "गंभीर विवाद" सामने आए हैं, माध्यस्थम् न्यायाधिकरण के पास धारा 17 के आवेदन पर विचार करने और निर्णय लेने में अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का अभाव है, के समान नहीं है कि । वास्तव में, माध्यस्थम् न्यायाधिकरण अनुबंध और प्रतिबंध आदेश का उल्लेख करने, कानून का प्रयोग करने और अंत में स्थगन आदेश जारी करने में अपने क्षेत्राधिकार के भीतर था । यदि यह मान भी लिया जाए कि विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 41(ई) के द्वारा स्थापित सिद्धांत का उल्लंघन किया गया था क्योंकि वहॉ हर्जाना दिया जा सकता था, जिसके परिणामस्वरूप निषेधाज्ञा जारी नहीं की जानी चाहिए थी, यह महज विधि की त्रुटि है, न कि क्षेत्राधिकार की त्रुटि । अंतर्निहित क्षेत्राधिकार, जो मामले की जड़ तक जा रहा हो, की त्रुटि तो बिल्कुल भी नहीं है। इसलिए, अन्यथा भी, उच्च न्यायालय का निर्णय बरकरार नहीं रखा जा सकता और अपास्त किया जाता है । [पैरा 16]

1.6 यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि उच्च न्यायालय ने स्वयं इस मामले में पहली अपील का निपटारा कर दिया होता, तो अनुच्छेद 227 की कोई भी याचिका संभवतः दायर नहीं की जा सकती थी । जो शायद किया जा सकता था, वह उसी उच्च न्यायालय की एक खंड पीठ के समक्ष एल. पी. ए. दायर करना था। केवल इसलिए कि इस मामले के तथ्यों पर, पहली अपील का निपटारा उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय द्वारा किया गया था, अनुच्छेद 227 की याचिका पर विचार नहीं किया जाना चाहिए था। [पैरा 17]

1.7 उच्च न्यायालयों को अनुच्छेद 227 के तहत दायर याचिकाओं का निपटारा करने में विधायी नीति जो सामान्य पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के योग्य है और धारा 115 सी.पी.सी. में किए गए संशोधनों द्वारा निहित है, को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए । विधायी नीति यह है कि यदि अपील का कोई वैकल्पिक उपाय उपलब्ध हो तो कोई पुनरीक्षण नहीं दायर किया जा सकता है। इसके अलावा, यदि कोई पुनरीक्षण लाया भी जाता है, तब भी यह केवल पूरे मामले के अंतिम निपटारे के खिलाफ होता है, न कि अंतर्वर्ती आदेशों के खिलाफ। मध्यस्थता कार्यवाही का यथासंभव शीघ्र निष्पादन, अधिनियम में निहित अधिदेश के अनुसार हो सकता है [पैरा 18,19]

एस.बी.पी. एंड कंपनी बनाम पटेल इंजीनियरिंग लिमिटेड और अन्य[5] – **सुभिन्नित**

पंजाब एग्रो इंडस्ट्रीज कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम केवल सिंह ढिल्लों[6] – **संदर्भित**

टेक सिंह बनाम शशि वर्मा और अन्य[7] – **संदर्भित**

[रोहिंटन फाली नरीमन, अनिरुद्ध बोस और वी. रामसुब्रमणियन, न्यायाधीशगण]

मुकुल रोहतगी, वरिष्ठ अधिवक्ता, महेश अग्रवाल, ऋषि अग्रवाल, अंकुर सहगल, शुभम कुलश्रेष्ठ, ई. सी. अग्रवाल, सुश्री मिशा रोहतगी, सुश्री पारुल शुक्ला, अजितेश सोनी – **अपीलार्थी के लिए अधिवक्तागण ।**

के. एम. नटराज, ए. एस. जी., संदीप महापात्रा, अभिषेक प्रहराज, विनायक शर्मा, कानू अग्रवाल, मनन पोपली, सुश्री मृण्मयी साहू – **प्रत्यर्थीगण के लिए अधिवक्तागण ।**

न्यायालय का निर्णय दिया गया – रोहिंटन फाली नरीमन, न्यायाधीश

दिनांक . 28 नवंबर, 2019

1. अवकाश स्वीकृत ।

2. वर्तमान अपील उन मामलों, जिनका निर्णय मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 (संक्षेप में "अधिनियम") के तहत किया जाता है, के संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत क्षेत्राधिकार के प्रयोग से संबंधित महत्वपूर्ण सवाल उठाती है ।

3. वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी ऑयल एंड नेचुरल गैस कॉर्पोरेशन लिमिटेड (संक्षेप में "ओ. एन. जी. सी".) ने अपीलार्थी को पांच साल की अवधि के लिए एक मोबाइल एयर कंप्रेसर की आपूर्ति के लिए अनुबंध दिया । अनुबंध में प्रवेश करने के तुरंत बाद, ओ. एन. जी. सी. द्वारा अनुबंध को 11.10.2017 को इस आधार पर समाप्त कर दिया गया कि उपकरण का कुछ हिस्सा नया नहीं बल्कि केवल पुराना था । इस स्थिति पर अपीलार्थी द्वारा विवाद किया गया । अगले ही दिन, अर्थात 12.10.2017 को अपीलार्थी के विक्रेता कोड को अवरुद्ध कर दिया गया, जिसका अर्थ हुआ कि अपीलार्थी ओ. एन. जी. सी. द्वारा आगे विज्ञापित किसी भी अन्य बोली के लिए बोली लगाने में असमर्थ होगा। 18.10.2017 को ओ. एन. जी. सी. द्वारा अपीलार्थी को कारण दर्शाएँ नोटिस जारी किया गया था जिसमें उससे पूछा गया था कि उसे "अवकाश पर" यानी दो साल की अवधि के लिए काली सूची में क्यों नहीं रखा जाना चाहिए ।

4. चूंकि पक्षों के बीच विवाद उत्पन्न हो गए, इसलिए अपीलार्थी ने 02.11.2017 को अनुबंध में निहित मध्यस्थता खंड का आह्वान किया । यह नोटिस मध्यस्थ के साथ–साथ इस न्यायालय के समक्ष भी विवाद का विषय है और इसका उल्लेख बाद में किया जाएगा । नोटिस के अनुसार, एक न्यायाधीश जे. सी. उपाध्याय (उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश) को 21.12.2017 को पक्षों के बीच विवादों का फैसला करने के लिए एकमात्र मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया गया । 02.02.2018 को अपीलार्थी द्वारा विद्वान मध्यस्थ के समक्ष एक दावा याचिका दायर की गई थी जिसमें अनुबंध की समाप्ति/कारण दर्शाएँ नोटिस को चुनौती दी गई थी और हर्जाने की मॉग की गई थी । दावा याचिका दायर किए जाने के बाद, 15.02.2018 को, ओ. एन. जी. सी. द्वारा पारित एक आदेश द्वारा अपीलार्थी को 11.10.2017 के प्रभाव से दो साल की अवधि के लिए काली सूची में डाल दिया गया । इस दौरान, धारा 17 का एक आवेदन भी विद्वान मध्यस्थ के समक्ष दायर किया गया था। इसके बाद अपीलार्थी द्वारा याचिका के साथ–साथ धारा 17 आवेदन में संशोधन करने के लिए दिनांक 15.02.2018 के आदेश को चुनौती देने के लिए आवेदन दायर किए गए थे, जिसे विद्वान मध्यस्थ द्वारा 10.03.2018 को स्वीकार किया गया था ।

5. इस बीच, विद्वान मध्यस्थ के समक्ष धारा 16 का एक आवेदन मूल रूप से इस आधार पर था कि चूंकि मध्यस्थता नोटिस केवल समझौते की समाप्ति तक ही सीमित था, काली सूची में डालना मध्यस्थ के दायरे से बाहर होगा । इस धारा 16 के आवेदन को विद्वान मध्यस्थ द्वारा 09.05.2018 को खारिज कर दिया गया, जिसमें विद्वान मध्यस्थ ने माना था कि दिनांक 02.11.2017 का नोटिस केवल अनुबंध की समाप्ति तक ही सीमित नहीं था, बल्कि दो साल के प्रतिबंध लगाए जाने के संबंध में भी था । उनके द्वारा आगे अभिनिर्धारित किया गया कि प्रतिबंध आदेश अनुबंध के खंड 18 से संबंधित था और इसलिए 15.02.2018 के कार्यालय आदेश की

वैधता उनके द्वारा तय की जा सकती है, और परिणामस्वरूप प्रतिवादी द्वारा दायर धारा 16 के आवेदन को खारिज कर दिया ।

6. उसी दिन अर्थात 09.05.2018 को, विद्वान मध्यस्थ द्वारा धारा 17 के आवेदन को अलग से निष्पादित किया गया, जिसमें विद्वान मध्यस्थ द्वारा दिनांक 15.02.2018 के आदेश के क्रियान्वयन पर इस शर्त पर रोक लगा दिया गया कि दो साल का प्रतिबंध केवल तभी लागू होगा जब अपीलकर्ता अंततः अंतिम मध्यस्थता कार्यवाही में हार जाता है ।

7. धारा 17 के आदेश के खिलाफ एक अपील दायर की गई और सिटी सिविल कोर्ट, अहमदाबाद द्वारा 31.05.2018 को उसका निष्पादन किया गया, जिसके द्वारा विद्वान मध्यस्थ के आदेश को बरकरार रखा गया । फलस्वरूप धारा 37 के तहत दाखिल प्रथम अपील खारिज कर दिया गया । इस स्तर पर, और पार्टियों के बीच मुख्य विवाद जो हमारे सामने है, वह एक विशेष सिविल आवेदन संख्या 9305/2018 है जो गुजरात उच्च न्यायालय के अहमदाबाद पीठ के समक्ष भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत दायर किया गया था जिसमें सिटी सिविल कोर्ट के आदेश को चुनौती दी गयी थी । दिनांक 25.07.2018 के आक्षेपित फैसले में, गुजरात उच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ता की ओर से उठाए गए प्रारंभिक तर्क का उल्लेख किया कि अनुच्छेद 227 के तहत दायर याचिका को प्रारंभिक स्तर पर खारिज कर दिया जाना चाहिए क्योंकि इसमें कोई क्षेत्राधिकार संबंधी मुद्दा नहीं उठाया गया है । उच्च न्यायालय ने इस प्रश्न का उत्तर दिए बिना कहा कि प्रतिबंध आदेश, वास्तव में, एक सामान्य अनुबंध नियमावली के तहत पारित किया गया था, न कि समझौते के खंड 18 के तहत, जिसके परिणामस्वरूप मध्यस्थ के अधिकार क्षेत्र को लेकर गंभीर विवाद उत्पन्न हुए । मध्यस्थता के नोटिस पढ़ने पर यह भी माना गया कि नोटिस में दो साल के प्रतिबंध का मुद्दा नहीं उठाया गया था और यह केवल अवैध समाप्ति तक ही सीमित था। उच्च न्यायालय ने अंततः माना कि प्रतिबंध आदेश की धारा 17 के तहत संभवतः कोई स्थगन नहीं दिया जा सकता है क्योंकि उन मामलों में निषेधाज्ञा नहीं दी जा सकती है जहां पार्टी के नुकसान की भरपाई हो सकती है। यह मामला होने पर, रिट याचिका स्वीकृत की गई और अहमदाबाद सिटी सिविल कोर्ट के आदेश को अपास्त कर दिया गया ।

8. अपीलार्थी की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मुकुल रोहतगी ने तर्क दिया कि उच्च न्यायालय ने प्रारंभिक आपत्ति का उल्लेख किया, लेकिन उसका उत्तर नहीं दिया था । उन्होंने हमारा ध्यान अधिनियम, विशेष रूप से धारा 5 और 37 के प्रावधानों की ओर दिलाया और तर्क दिया कि धारा 5 में निहित गैर अवरोधक खंड को देखते हुए तथा धारा 37 के तहत पहली अपील के संकुचित अधिकार और दूसरी अपील के अधिकार से इनकार के कारण्, एक बार असफल होने पर किसी भी परिस्थिति में दूसरा अवसर दिए जाने की अनुमति नहीं होगी, और इस तथ्य के बावजूद कि अधिनियम की धारा 5 संभवतः एक संवैधानिक प्रावधान, अर्थात् अनुच्छेद 227 को बाधित नहीं कर सकती है, फिर भी लगभग हर मामले में अनुतोष देने से इनकार करने के लिए वैधानिक योजना को ध्यान में रखा जाना चाहिए। इस उद्देश्य से, उन्होंने

इस न्यायालय द्वारा एसबीपी एंड कंपनी बनाम पटेल इंजीनियरिंग लिमिटेड और अन्य[8], के मामले में दिए निर्णय को संदर्भित किया । उन्होंने फ़्यूरस्ट डे लॉसन लिमिटेड बनाम जिंदल एक्सपोर्ट्स लिमिटेड[9] के मामले में दिए गए निर्णय को संदर्भित किया कि अधिनियम एक स्व–निहित संहिता है जिसके परिणामस्वरूप न केवल अधिनियम के धारा 37(2) के तहत दूसरी अपीलों पर स्पष्ट रूप से रोक लगाई जाएगी, बल्कि लेटर्स पेटेंट के तहत दायर अपीलों पर भी प्रतिबंध लगाया जाएगा। उन्होने यह बताने का भी प्रयास किया कि धारा 115 सी.पी.सी. के तहत भी, जैसा कि संशोधित है, पुनरीक्षण केवल उन मामलों में होगा जहां कोई अपील नहीं होगी, और 2002 से प्रभावी प्रावधान के तहत, कोई भी पुनरीक्षण याचिका अंतर्वर्ती आदेशों के खिलाफ सुनवाई योग्य नहीं होगी । इसके बाद उन्होंने हमें आक्षेपित फैसले के बारे में बताया और कहा कि गुण–दोष के आधार पर की गई टिप्पणियाँ स्वयं त्रुटिपूर्ण थीं और "क्षेत्राधिकार के संबंध में गंभीर विवाद" क्षेत्राधिकार की कमी नहीं मानी जाएगी। उन्होंने यह भी कहा कि, अधिक से अधिक, इसे केवल विधि की त्रुटि कहा जा सकता है, जिसमें किसी भी मामले में भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है ।

9. प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल श्री के. एम. नटराज ने हमें तथ्यों के बारे में बताया और यह इंगित करने के लिए प्रयासरत थे कि अनुबंध के प्रासंगिक खंड के तहत, जो कि खंड 27.1 है, मध्यस्थता का आह्वान करते समय उसे विवाद के सभी बिंदुओं को मध्यस्थता के आह्वान के समय दावा की गई राशि के विवरण के साथ निर्दिष्ट करना होगा, न कि उसके बाद। उन्होंने इस तथ्य पर जोर दिया कि दिनांक 02.11.2017 के नोटिस को सरसरी तौर पर पढ़ने से पता चलता है कि यह अवैध समाप्ति तक ही सीमित था और दो साल के लिए लगाए गए प्रतिबंध के बारे में कोई दलील नहीं दी गई थी। उन्होंने आगे एस. बी. पी. एंड कंपनी[10] के मामले में दिए निर्णय को यह कहते हुए सुभिन्नित किया कि यह केवल उस चरण में लागू होता है जहां अनुच्छेद 226/227 के तहत सीधे माध्यस्थम् न्यायाधिकरण के आदेश में हस्तक्षेप करने की मांग की गई थी, जिस संदर्भ में सात न्यायाधीशगण की पीठ ने विचार किया था । प्रस्तुत मामला में न्यायाधिकरण के आदेश पहली अपीलीय अदालत में गए थे, जिसे खारिज कर दिया गया था, जिसके परिणामस्वरूप पहली अपीलीय अदालत का आदेश सीधे अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालय के पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार के तहत आया था। इसके बाद उन्होंने पंजाब एग्रो इंडस्ट्रीज कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम केवल सिंह ढिल्लों[11], के मामले में दिए निर्णय का हवाला दिया, जिसने एसबीपी एंड कंपनी[12] के मामले में दिए निर्णय को एक मामले में सुभिन्नित किया था जिसमें अनुच्छेद 227 की याचिका को मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए धारा 11 के आवेदन को खारिज किए जाने के आदेश के खिलाफ विचारणीय माना गया था। इसके बाद उन्होंने कई निर्णयों का हवाला दिया, जिसमें कहा गया था कि हालांकि अनुच्छेद 227 के तहत शक्ति का प्रयोग संयम से किया जाना चाहिए, लेकिन इसका प्रयोग क्षेत्राधिकार की कमी के मामलों में निश्चित रूप से किया जा सकता है, और वर्तमान मामला भी ऐसा ही है। इसके बाद उन्होंने अपील के तहत फैसले का बचाव करते हुए कहा कि इसमें सही निर्णय लिया गया है कि वर्तमान

मामले की परिस्थितियों में मध्यस्थ द्वारा विशिष्ट अनुतोष अधिनियम में निहित मौलिक सिद्धांतों के आधार पर धारा 17 के तहत संभवतः कोई स्थगन आदेश नहीं दिया जा सकता है। इस मामले में हर्जाना हमेशा दिया जा सकता था, और इसलिए, प्रस्तुत मामले के तथ्यों में दी गई निषेधाज्ञा को अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए था ।

10. दोनों पक्षों के विद्वान वकील को सुनने के बाद, सबसे पहले मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 के कुछ प्रावधानों को बयान करना आवश्यक है ।

धारा 5 में कहा गया हैः

" 5. न्यायिक हस्तक्षेप का विस्तार – किसी भी बात के बावजूद तत्काल प्रवृत्त किसी अन्य विधि में निहित, इस भाग द्वारा शासित मामलों में, कोई भी न्यायिक प्राधिकार हस्तक्षेप नहीं करेगा, सिवाय इसके कि इस भाग में इस प्रकार का उपबंध किया गया हो। ”

धारा 37, जो महत्वपूर्ण भी है, निम्नलिखित रूप में बताती हैः

"37. अपील योग्य आदेश – (1) आदेश पारित करने वाले न्यायालय के मूल आज्ञप्ति से अपील सुनने के लिए कानून द्वारा अधिकृत न्यायालय को निम्नलिखित आदेशों (और किसी अन्य से नहीं) से अपील की जाएगी, अर्थात्ः

(क) धारा 8 के तहत पक्षकारों को मध्यस्थता के लिए भेजने से इनकार करना ; (ख) धारा 9 के तहत कोई उपाय देना या देने से इनकार करना;

(ग) धारा 34 के तहत मध्यस्थता पंचाट को अपास्त करना या करने से इनकार करना ।

(2) माध्यस्थम् न्यायाधिकरण की अनुमति देने वाले आदेश के खिलाफ अदालत में अपील भी की जाएगी

(क) धारा 16 की उप–धारा (2) या उप–धारा (3) में निर्दिष्ट याचिका को स्वीकार करना; या

(ख) धारा 17 के तहत एक अंतरिम उपाय देना या देने से इनकार करना ;

(3) इस धारा के तहत अपील में पारित आदेश से कोई दूसरी अपील नहीं होगी, लेकिन इस धारा में कुछ भी सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने के किसी भी अधिकार को प्रभावित या वंचित नहीं करेगा।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि अधिनियम की धारा 29ए के तहत, जिसे संशोधन अधिनियम, 2016 द्वारा जोड़ा गया था, एक समय सीमा बनाई गई थी, अर्थात्, माध्यस्थम् न्यायाधिकरण के संदर्भ में प्रवेश करने की तारीख से 12 महीने के भीतर मध्यस्थता पंचाट दिए जाने चाहिए। साथ ही, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि जहां तक धारा 34 के आवेदनों का संबंध है, उसी संशोधन

द्वारा जोड़ी गई धारा 34 (6) में कहा गया है कि इन आवेदनों का शीघ्रता से निष्पादन किया जाना चाहिए, और किसी भी स्थिति में, उस तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर जिस दिन उप–धारा (5) में निर्दिष्ट सूचना अन्य पक्षों को दी जाती है ।

11. उपरोक्त वैधानिक प्रावधानों को देखते हुए और इस तथ्य को देखते हुए कि 1996 के अधिनियम ने पिछले तीन अधिनियमों को निरस्त कर दिया था ताकि इसके अंतर्गत आने वाले सभी मामलों का तेजी से निपटारा किया जा सके, यह स्पष्ट है कि अधिनियम की वैधानिक नीति यह है कि न केवल मध्यस्थता कार्यवाही का स्वयं निष्पादन के लिए निर्धारित समय सीमाएं हैं , बल्कि धारा 34 के संदर्भों पर निर्णय लेने के लिए समय सीमा भी निर्धारित की गई है। समान रूप से, भारत संघ बनाम मेसर्स वरिंदरा कॉन्स्ट० लिमिटेड[13] के मामले का निपटारा करते हुए, इस न्यायालय ने धारा 37 के तहत पहली अपीलों पर स्वयं–समान सीमा लागू की है ताकि मध्यस्थता पंचाटों के दायरे में आने वाले सभी मामलों का समय पर समाधान हो सके ।

12. इन सबमें धारा 5 में निहित गैर अवरोधक खंड सबसे महत्वपूर्ण है जिसमें कहा गया है कि किसी भी धारा में कुछ भी निहित होने के बावजूद अन्य कानून, मध्यस्थता अधिनियम के भाग 1 के तहत उत्पन्न होने वाले मामलों में, कोई न्यायिक प्राधिकार, जहां इस भाग में इस प्रकार का उपबंध किया गया है, के अलावा हस्तक्षेप नहीं करेंगे। धारा 37 कुछ निर्णयों और आदेशों के खिलाफ पहली अपील का एक संकुचित अधिकार प्रदान करती है और कोई अन्य नहीं। इसके अलावा, वैधानिक अधिदेश में एक ही प्रयास का प्रावधान है, और यह दायर की जा रही दूसरी अपील को रोकता है (अधिनियम की धारा 37 (2) देखें)।

13. यह मामला होने के कारण, इसमें कोई संदेह नहीं है कि यदि धारा 37 के तहत अपील में पारित आदेशों के खिलाफ संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत याचिकाएं दायर की जाती हैं तब संपूर्ण मध्यस्थता प्रक्रिया रुक जाएगी और कई वर्षों तक फलीभूत नहीं होगी । साथ ही यह भी नहीं भूला जा सकता कि अनुच्छेद 227 एक संवैधानिक प्रावधान है जो अधिनियम की धारा 5 के गैर अवरोधक खंड से अप्रभावित रहता है । इन परिस्थितियों में, ध्यान देने योग्य बात यह है कि हालाँकि अधिनियम की धारा 37 के तहत दायर पहली अपील द्वारा स्वीकृति या खारिज करने वाले निर्णयों के विरुद्ध अनुच्छेद 227 के तहत याचिकाएँ दायर की जा सकती हैं , फिर भी उच्च न्यायालय, साविधिक नीति को ध्यान में रखते हुए इसमें हस्तक्षेप करने में अत्यंत सतर्क रहेगा, ताकि हस्तक्षेप उन पारित आदेशों तक सीमित रहे जिनमें अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का स्पष्ट अभाव हो ।

14. निवेदिता शर्मा बनाम सेल्युलर ऑपरेटर्स एसोसिएशन भारत और अन्य[14], के मामले में इस न्यायालय ने कई निर्णयों का उल्लेख किया और अभिनिर्धारित किया:

> '11. हमने संबंधित तर्कों/प्रस्तुतियों पर विचार किया है । इसमें कोई विवाद नहीं हो सकता कि उच्च न्यायालयों की शक्तियाँ निर्देश, आदेश या रिट, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत

बंदी प्रत्यक्षीकरण, उत्प्रेषण, परमादेश, अधिकार पृच्छा और प्रतिषेध जारी करना संविधान की एक बुनियादी विशेषता है और इसे संसदीय कानून द्वारा कम नहीं किया जा सकता है – एल. चंद्र कुमार बनाम भारत संघ[15]। हालाँकि, यह कहना एक बात है कि उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत निहित शक्ति के प्रयोग में, राज्य और/या इसकी एजेंसी/साधनकर्ता या किसी सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा पारित किसी भी आदेश या की गई कार्रवाई या किसी अर्ध–न्यायिक निकाय/प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश के खिलाफ रिट याचिका पर विचार किया जा सकता है, और यह कहना पूरी तरह से अलग है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर प्रत्येक याचिका की उच्च न्यायालय द्वारा, इस तथ्य की अनदेखी करते हुए निश्चित रूप से विचार किया जाना चाहिए कि पीड़ित व्यक्ति के पास एक प्रभावी विकल्प उपचार उपलब्ध है । प्रत्युत, यह स्थापित विधि है कि जब शिकायतों के निवारण के लिए कानून द्वारा एक वैधानिक मंच बनाया जाता है, तो वैधानिक व्यवस्था की अनदेखी करते हुए एक रिट याचिका पर विचार नहीं किया जाएगा ।

12. थानसिंह नथमल बनाम कर अधीक्षक[16] के मामले में, इस न्यायालय ने स्वयं लगाए गए संयम के नियम को लागू किया कि यदि पीड़ित व्यक्ति के लिए कोई प्रभावी उपाय उपलब्ध है तो रिट याचिका पर विचार नहीं किया जाएगा और टिप्पणी किया –

> "7 ..... इसलिए उच्च न्यायालय तथ्य की त्रुटियों को सुधारने के लिए किसी अदालत या न्यायाधिकरण के फैसले के खिलाफ अपील की अदालत के रूप में कार्य नहीं करता है, और अनुच्छेद 226 के तहत क्षेत्राधिकार ग्रहण करके अनुतोष प्राप्त करने हेतु कानून द्वारा प्रदत्त वैकल्पिक उपचार का अतिक्रमण करता है। जहां व्यथित याचिकाकर्ता के लिए किसी अन्य न्यायाधिकरण में या किसी कानून द्वारा प्रदान किए गए तरीके से निवारण प्राप्त करने के लिए खुद भी किसी अन्य क्षेत्राधिकार में जाने का अधिकार है, उच्च न्यायालय सामान्यतया कानून के तहत बनाई गई मशीनरी को दरकिनार कर संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत याचिका पर विचार करने की अनुमति नहीं देगा, और आवेदन करने वाले पक्ष को इस तरह से स्थापित मशीनरी का सहारा लेने के लिए छोड़ देगा ।"

13. टीटाघुर पेपर मिल्स कं. लिमिटेड बनाम उड़ीसा राज्य[17] के मामले में इस न्यायालय ने टिप्पणी कीः

> " 11. यह सुस्थापित है कि जहां क़ानून द्वारा एक अधिकार या दायित्व का निर्माण् किया जाता है जो इसे लागू करने के लिए एक विशेष उपाय देता है तो उस क़ानून द्वारा प्रदान किए गए उपाय का ही लाभ उठाया जाना चाहिए। इस नियम को विल्स, न्यायाधीश द्वारा वॉल्वरहैम्प्टन न्यू वाटरवर्क्स कं. बनाम हॉक्सफोर्ड[18] के मामले में निम्नलिखित परिच्छेद में बहुत स्पष्टता के साथ कहा गया था '...एक क़ानून पर आधारित मामलों की तीन श्रेणियां हैं जिनमें दायित्व स्थापित किया जा सकता है । लेकिन एक तीसरी श्रेणी भी है, अर्थात, जहां सामान्य कानून में मौजूद नहीं होने वाला दायित्व एक क़ानून द्वारा बनाया

जाता है जो साथ ही इसे लागू करने के लिए एक विशेष और विशिष्ट उपाय देता है । कानून द्वारा प्रदान किए गए उपाय का पालन किया जाना चाहिए, और पक्षकार द्वितीय श्रेणी के मामलों के लिए लागू कार्यप्रणाली को अपनाने के लिए सक्षम नहीं है। विधि द्वारा दिया गया स्वरूप अपनाया जाना चाहिए और उसका पालन किया जाना चाहिए । '

इस परिच्छेद में निर्धारित नियम को नेविल बनाम लंदन एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स लिमिटेड[19] के मामले में हाउस ऑफ लॉर्ड्स द्वारा अनुमोदित किया गया था और प्रिवी काउंसिल द्वारा अटॉर्नी जनरल ऑफ त्रिनिदाद एंड टोबैगो बनाम गॉर्डन ग्रांट एंड कंपनी लिमिटेड[20] और सेक्रेटरी ऑफ स्टेट बनाम मास्क एंड कंपनी[21] के मामलो में पुनः पुष्टि की गई । यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि अधिकारों के प्रवर्तन में यह समान रूप से लागू है, और इस न्यायालय द्वारा लगातार इसका पालन किया गया है। इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिकाओं को आरंभ में खारिज किया जाना उचित था।"

14. मफतलाल इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम भारत संघ[22] के मामले में बी. पी. जीवन रेड्डी, न्यायाधीश (बड़ी पीठ में बहुमत की तरफ से बोलते हुए) ने टिप्पणी की: " 77..... जहाँ तक अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार या उस मामले के लिए, अनुच्छेद 32 के तहत इस न्यायालय के क्षेत्राधिकार का संबंध है, यह स्पष्ट है कि अधिनियम के प्रावधान इन उपायों को रोक और कम नहीं कर सकते हैं। हालाँकि, यह समान रूप से स्पष्ट है कि अनुच्छेद 226/अनुच्छेद 32 के तहत शक्ति का प्रयोग करते समय, न्यायालय निश्चित रूप से अधिनियम के प्रावधानों में प्रकट विधायी इरादे पर ध्यान देगा और अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करेगा ।"

15. श्री वैद्यनाथन द्वारा संदर्भित निर्णयों में, जो मोटे तौर पर, बाबूराम प्रकाश चंद्र माहेश्वरी बनाम अन्तरिम जिला परिषद[23] के मामले में निर्धारित प्रस्ताव को दोहराते हैं। यह अभिनिर्धारित किया गया है कि कोई वैकल्पिक उपाय, किसी भी मौलिक अधिकार को लागू करने के लिए या जहां प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ है या जहां चुनौती के तहत आदेश पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र के बिना है या कानून के अधिकार को चुनौती दी गई है, दायर रिट याचिका पर विचार करने के लिए बाधा नहीं है ।

16. इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि इस न्यायालय ने वैकल्पिक उपचार के नियम के कुछ अपवादों को मान्यता दी है। हालाँकि, थानसिंह नथमल बनाम कर अधीक्षक (उपरोक्त) और अन्य समान निर्णयों में प्रस्तावित नियम, कि यदि पीड़ित व्यक्ति के पास कोई प्रभावी वैकल्पिक उपाय उपलब्ध है या क़ानून जिसके तहत शिकायत की गई कार्रवाई की गई है, उसमें शिकायत के निवारण के लिए एक तंत्र शामिल है तो उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत किसी याचिका पर विचार नहीं करेगा, अभी भी यथावत है।"

एस. बी. पी. एंड कंपनी[24] के मामले में, इस न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत एक माध्यस्थम् न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप पर विचार करते हुए निम्नलिखित रूप में निर्धारित किया हैः "

> 45. यह देखा गया है कि कुछ उच्च न्यायालयों ने इस आधार पर कार्यवाही की है कि मध्यस्थता के दौरान माध्यस्थम् न्यायाधिकरण द्वारा पारित किसी भी आदेश को संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के तहत चुनौती दी जा सकती है। हमें इस तरह के रुख का कोई औचित्य नहीं दिखता । धारा 37 माध्यस्थम् न्यायाधिकरण के कुछ आदेशों को अपील योग्य बनाती है। धारा 34 के तहत, पीड़ित पक्ष के पास अधिनियम की धारा 16 के तहत कार्य करने वाले माध्यस्थम् न्यायाधिकरण द्वारा पारित किए गए पंचाट एवं इस बीच उन आदेशों के जो इसके द्वारा पारित किए गए हो सकते हैं, के खिलाफ अपनी शिकायतों को व्यक्त करने का एक अवसर है । माध्यस्थम् न्यायाधिकरण के किसी भी आदेश से पीड़ित पक्ष को, जब तक कि अधिनियम की धारा 37 के तहत अपील का अधिकार न हो, तब तक प्रतीक्षा करनी होगी जब तक कि न्यायाधिकरण द्वारा पंचाट पारित नहीं किया जाता है। यह अधिनियम की योजना प्रतीत होती है। आखिरकार, माध्यस्थम् न्यायाधिकरण पक्षों के बीच एक अनुबंध का एक निर्माण है, मध्यस्थता समझौता, हालॉकि, यदि अवसर उत्पन्न हो, तो मुख्य न्यायाधीश पक्षों के बीच अनुबंध के आधार पर इसका गठन कर सकते हैं। लेकिन इससे माध्यस्थम् न्यायाधिकरण की स्थिति नहीं बदलेगी । यह अभी भी पार्टियों द्वारा समझौते द्वारा चुना गया एक मंच होगा। इसलिए हम कुछ उच्च न्यायालयों द्वारा अपनाए गए इस रुख को अस्वीकार करते हैं कि माध्यस्थम् न्यायाधिकरण द्वारा पारित कोई भी आदेश संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा सुधारा जा सकता है। उच्च न्यायालयों द्वारा इस तरह के हस्तक्षेप की अनुमति नहीं है ।
>
> 46. जब मामला मध्यस्थता की प्रक्रिया में हो तो माध्यस्थम् न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए प्रत्येक आदेश के खिलाफ संविधान के अनुच्छेद 227 या अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया जाना, न्यायिक हस्तक्षेप को कम करने के उद्देश्य को निश्चित रूप से विफल कर देगा । इसलिए, यह इंगित करना आवश्यक है कि एक बार माध्यस्थम् न्यायाधिकरण में मध्यस्थता शुरू हो जाने के बाद, पक्षों को तब तक इंतजार करना होगा जब तक कि पंचाट घोषित नहीं किया जाता है जब तक, निश्चित रूप से, अधिनियम की धारा 37 के तहत उनके लिए अपील का अधिकार प्रारंभिक चरण में भी उपलब्ध न हो ।
>
> जबकि विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल का यह कहना सही है कि कानून का यह कथन प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर सीधे तौर पर लागू नहीं होता है, फिर भी यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि सात न्यायाधीशों की पीठ ने अधिनियम के उद्देश्य को न्यायिक

हस्तक्षेप को कम करने के लिए संदर्भित किया है और जब अधिनियम के तहत निर्णीत कार्यवाहियों के खिलाफ 227 याचिकाओं का निपटारा किया जा रहा है तो इस महत्वपूर्ण उद्देश्य को हमेशा सर्वोपरि रखा जाना चाहिए ।

15. यह सत्य है कि पंजाब एग्रो इंडस्ट्रीज कॉर्पोरेशन लिमिटेड[25] के मामले में इस न्यायालय ने एस. बी. पी. एंड कंपनी[26] को यह कहते हुए सुभिन्नित किया कि यह मध्यस्थ की गैर–नियुक्ति के मामले में लागू नहीं होगा। इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया :

"9. हमने पहले ही देखा है कि धारा 11(4) के तहत आदेश हालांकि एक न्यायिक आदेश है, धारा 11(7) को ध्यान में रखते हुए जो ऐसे आदेशों की अंतिमता से संबंधित है और अपील के लिए किसी प्रावधान की अनुपस्थिति में, सिविल जज के आदेश को संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत रिट याचिका में चुनौती दी जा सकती थी । एस. बी. पी. एंड कंपनी[27] के फैसले में ऐसी रिट याचिका पर रोक नहीं है। एस. बी. पी. एंड कंपनी[28] के फैसले में इस न्यायालय की यह टिप्पणी कि अधिनियम की धारा 11 के तहत एक आदेश के खिलाफ, केवल संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत एक अपील होगी, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश या उस उच्च न्यायालय के नामित न्यायाधीश द्वारा दिए गए आदेशों के संदर्भ में है। उक्त टिप्पणियां मुख्य न्यायाधीश के पदनाम के रूप में कार्य करने वाले अधीनस्थ न्यायालय पर लागू नहीं होती हैं।"

इस फैसले में ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस न्यायालय की टिप्पणियाँ इस कारण से थीं कि धारा 11 के तहत पारित आदेशों के खिलाफ अपील का कोई प्रावधान कानून द्वारा नहीं दिया गया था। यही कारण है कि अनुच्छेद 136 के तहत इस न्यायालय में आने से पहले उच्च न्यायालय के पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। वर्तमान मामले के तथ्यों को देखते हुए, यह मामला इस कारण से समान रूप से अलग है कि इस मामले में अनुच्छेद 227 के क्षेत्राधिकार का प्रयोग उच्च न्यायालय द्वारा अधिनियम की धारा 37 के तहत पहली अपील खारिज होने के बाद ही किया गया है ।

16. इस मामले की एक और विशेषता कुछ महत्वपूर्ण है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, 09.05.2018 को, विद्वान मध्यस्थ द्वारा धारा 16 के एक आवेदन को खारिज कर दिया गया था, जिसमें काफी हद तक वही विवाद उठाया गया था, जिसे उच्च न्यायालय का समर्थन मिला था। अधिनियम की धारा 16 की कवायद वह है कि यदि धारा 16 का एक आवेदन खारिज किया गया है, वहॉ अपील का प्रावधाल नहीं है और धारा 16 के तहत खारिज हुए आवेदन को दिए जाने वाली चुनौती को अंतिम पंवाट के पारित होने तक का इंतजार करना होगा और उस स्तर पर इसे धारा 34 के तहत उठाया जा सकता है । उच्च न्यायालय ने वर्तमान मामले में, मध्यस्थ द्वारा धारा 16 में सुने गए आवेदन के समान ही मामले को सुनकर, इस वैधानिक योजना को पलट दिया और फिर निर्णय लिया कि दो साल का प्रतिबंध मध्यस्थता के लिए 02.11.2017 को जारी किए गए नोटिस का हिस्सा नहीं था, एक ऐसा निष्कर्ष जो सीधे तौर पर धारा 16

आवेदन को खारिज करने वाले विद्वान मध्यस्थ के निष्कर्ष के विपरीत है। केवल इसी कारण से, अपील के तहत निर्णय को अपास्त करने की आवश्यकता है। अन्यथा भी, जैसा कि श्री रोहतगी ने सही बताया है, अपील के तहत निर्णय मामले के गुण–दोष पर जाता है और कहता है कि ठेकेदार और उसके निदेशकों को "छुट्टी पर" रखने की कार्रवाई समझौते की समाप्ति का परिणाम नहीं है। यह पूरी तरह से गलत है क्योंकि यह केवल समाप्ति के कारण है कि दो साल का प्रतिबंध लगाने का प्रस्ताव करते हुए 18.10.2017 का कारण बताएँ नोटिस भेजा गया था। अन्यथा भी, अनुच्छेद 227 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाली अदालत के लिए पक्षों के बीच विवादों के सामान्य घेरे में प्रवेश करना उपयुक्त नहीं है, जहां केवल अधिकार क्षेत्र की त्रुटियों को ठीक किया जा सकता है। इसलिए यह कहना गलत है कि प्रतिबंध आदेश एक सामान्य अनुबंध नियमावली के तहत पारित किया गया था और समझौते के खंड 18 के तहत नहीं, यह इस कारण से भी गलत होगा कि सामान्य अनुबंध नियमावली का मतलब यह नहीं है कि ऐसा आदेश कार्यकारी शक्ति का आह्वान करते हुए एक प्रशासनिक आदेश के रूप में जारी किया गया था, लेकिन अनुबंध से ही निकले केवल एक आदेश के रूप में था । इसके अलावा यह कहना कि अधिकार क्षेत्र के रूप में "गंभीर विवाद" सामने आए हैं, माध्यस्थम् न्यायाधिकरण के पास धारा 17 के आवेदन पर विचार करने और निर्णय लेने में अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का अभाव है, कहने के समान नहीं है । वास्तव में, माध्यस्थम् न्यायाधिकरण अनुबंध और प्रतिबंध आदेश का उल्लेख करने, कानून का प्रयोग करने और अंत में स्थगन आदेश जारी करने में अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर था। भले ही यह स्वीकार किया जाए कि विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 41(ई) के द्वारा स्थापित सिद्धांत का उल्लंघन किया गया था जहॉ हर्जाना दिया जा सकता था, जिसके परिणामस्वरूप निषेधाज्ञा जारी नहीं की जानी चाहिए थी, यह महज विधि की त्रुटि है और क्षेत्राधिकार की त्रुटि नहीं, अंतर्निहित क्षेत्राधिकार, जो मामले की जड़ तक जा रहा हो, की त्रुटि तो बिल्कुल भी नहीं है। इसलिए, अन्यथा भी, उच्च न्यायालय का निर्णय बरकरार नहीं रखा जा सकता और अपास्त किया जाता है ।

17. हम दोहराते हैं कि अधिनियम की नीति मध्यस्थता मामले का त्वरित निष्पादन है । मध्यस्थता अधिनियम एक विशेष अधिनियम है और मध्यस्थता से संबंधित एक स्व–निहित संहिता है। फ़्यूर्स्ट डे लॉसन लिमिटेड[29] के मामले में इस न्यायालय ने विशेष रूप से निम्नलिखित निर्णय दिया है:

> " 89. इस प्रकार, यह देखा जाना चाहिए कि मध्यस्थता अधिनियम, 1940, अपनी स्थापना से लेकर 2004 तक (पी. एस. सतप्पन बनाम आंध्रा बैंक लिमिटेड[30]) को एक स्व–निहित कोड माना गया था। अब, यदि मध्यस्थता अधिनियम, 1940 को मध्यस्थता से संबंधित मामलों पर एक स्व–निहित संहिता माना गया था, तो मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996, जो मध्यस्थता से संबंधित कानून को समेकित, संशोधित और अभिकल्पित करता है, उसे जितना संभव हो, UNCITRAL मॉडल के साथ सामंजस्य स्थापित करने के लिए और अधिक बनाए रखा जाना चाहिए। एक बार यह अभिनिर्धारित जाता है कि मध्यस्थता

अधिनियम एक स्व–निहित और संपूर्ण संहिता है, फिर इसे तुलजापुरकर, न्यायाधीश की स्पष्ट अभिव्यक्ति का उपयोग करते हुए अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए, कि इसका एक नकारात्मक निहितार्थ यह है कि केवल 'अधिनियम में उल्लिखित कार्य किए जाने की अनुमति हैं और जिन कार्यों या चीजों का उसमें उल्लेख नहीं किया गया है, उन्हें करने की अनुमति नहीं है'। दूसरे शब्दों में, सामान्य सिद्धांतों में से एक यह कि जहां विशेष अधिनियम एक स्व–निहित संहिता निर्धारित करता है, वहां सामान्य कानून प्रक्रिया की प्रयोज्यता को निहित रूप से बाहर रखा जाएगा और इस सिद्धांत के प्रयोग से एक लेटर्स पेटेंट अपील अपवर्जित होगा ।

यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि स्वयं उच्च न्यायालय ने वर्तमान मामले में पहली अपील का निष्पादन कर दिया होता, तो अनुच्छेद 227 की कोई भी याचिका दायर नहीं की जा सकती थी । शायद इतना ही किया जा सकता था कि उसी उच्च न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष एलपीए दायर किया जाए । जैसा कि हमने देखा है, फ़्यूर्स्ट डे लॉसन लिमिटेड[31] द्वारा विशेष रूप से इसका निषेध किया गया है। केवल इसलिए कि, इस मामले के तथ्यों के आधार पर, पहली अपील का निपटारा उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय द्वारा कर दिया गया था, अनुच्छेद 227 की याचिका पर विचार नहीं किया जाना चाहिए था ।

18. श्री रोहतगी यह इंगित करने में भी सही हैं कि उच्च न्यायालयों को अनुच्छेद 227 के तहत दायर याचिकाओं का निपटारा करने में विधायी नीति जो सामान्य पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आती है और धारा 115 सी.पी.सी. में किए गए संशोधनों द्वारा निहित है, को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए । विधायी नीति यह है कि यदि अपील का कोई वैकल्पिक उपाय उपलब्ध है तो कोई पुनरीक्षण नहीं दायर किया जा सकता है। इसके अलावा, यदि कोई पुनरीक्षण लाया भी जाता है, तब भी यह केवल पूरे मामले के अंतिम निपटारे के खिलाफ होता है, न कि अंतर्वर्ती आदेशों के खिलाफ। टेक सिंह बनाम शशि वर्मा और अन्य[32], के मामले में इस न्यायालय ने इन संशोधनों पर विचार किया और फिर कहा

> 7. इस परंतुक को पढ़ने से पता चलेगा कि, 1999 के बाद, सीपीसी की धारा 115 के तहत दायर पुनरीक्षण याचिकाएं अंतरिम आदेशों के खिलाफ सुनवाई योग्य नहीं हैं ।
>
> 8. अन्यथा भी, यह सुस्थापित है कि धारा 115 सीपीसी के तहत पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग केवल क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटियाँ को सही करने के लिए किया जाना है । डी. एल. एफ. हाउसिंग एंड कंस्ट्रक्शन कंपनी प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली बनाम सरूप सिंह और अन्य[33] के मामले में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:
>
> > " इस प्रकार यह स्थिति दृढ़ता से स्थापित प्रतीत होती है कि धारा 115 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय, उच्च न्यायालय तथ्य की त्रुटियों को ठीक करने के लिए सक्षम नहीं है, भले ही गंभीर या यहां तक कि कानून की त्रुटियां भी हों, जब तक कि उक्त त्रुटियों का संबंध विवाद का विचारण करने वाले न्यायालय के क्षेत्राधिकार से न हो।

इस धारा के खंड (ए) और (बी) का सादा वाचन स्पष्ट रूप से वर्तमान मामला को आच्छादित नहीं करते हैं । यह तर्क नहीं दिया गया था, क्योंकि निश्चित रूप से यह तर्क देना संभव नहीं था, कि विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने यह आदेश अभिलिखित करते हुए कि संदर्भ के तहत कार्यवाही को उच्च न्यायालय द्वारा विचाराधीन समझौते के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए कार्यवाही में अपील के निर्णय तक रोक दिया जाए, या तो उस क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया था जो कानून द्वारा उनमें निहित नहीं था या वह उस क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में विफल रहे थे जो उनमें निहित था । खंड (ग) भी वर्तमान मामले पर लागू नहीं होता है। इस खंड में प्रयुक्त शब्द "अवैध रूप से" और "महत्वपूर्ण अनियमितता के साथ" तथ्य या कानून की त्रुटियों को आच्छादित नहीं करते हैं; इनमें लिए गए निर्णय का उल्लेख नहीं है, बल्कि निर्णय लेने के तरीके का उल्लेख है। इस खंड द्वारा विचार की गई त्रुटियां, हमारे विचार में, या तो कानून के कुछ प्रावधानों के उल्लंघन से संबंधित हो सकती हैं या अंतिम निर्णय को प्रभावित करने वाली प्रक्रिया के महत्वपूर्ण दोषों से संबंधित हो सकती हैं, न कि निर्धारित औपचारिकताओं के अनुपालन के बाद तथ्य या कानून की त्रुटियों से संबंधित हो सकती हैं। ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि उच्च न्यायालय ने संहिता की धारा 115 के तहत अपनी शक्ति पर लगाई गई सीमा पर विचार किया है । केवल इसलिए कि यदि उच्च न्यायालय ने शुरू में मामले को निपटाया होता, तो अपील के निर्णय तक संदर्भ कार्यवाही पर रोक जारी रखने के सवाल पर एक अलग निष्कर्ष पर पहुंचने का झुकाव महसूस करता, संहिता की धारा 115 के तहत पुनरीक्षण पर हस्तक्षेप को शायद ही उचित ठहराया जा सकता है, जब इस प्रश्न से निपटने के तरीके में विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा कोई अवैधता या महत्वपूर्ण अनियमितता नहीं की गई थी। हमें ऐसा लगता है कि इस मामले में उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण को वस्तुतः ऐसे माना जैसे कि यह एक अपील थी।"

19. इन सभी कारणों से, हर्जाने के संबंध में बिना किसी आदेश के अपील स्वीकार की जाती है। तदनुसार, मध्यस्थता की कार्यवाही को अब अधिनियम में निहित आदेश के अनुसार यथासंभव शीघ्रता से निपटाया जा सकता है ।

निधि जैन अपील स्वीकृत

1 (2005) 8 एससीसी 618: [2005] 4 पूरक एससीआर 688

2 (2011) 8 एससीसी 333: [2011] 11 एससीआर 1

3 (2020) 2 एससीसी 111

4 (2011) 14 एससीसी 337

5 उपरोक्त (1)

6 (2008) 10 एससीसी 128: [2008] 12 एससीआर 569

7 2019 एससीसी ऑनलाइन एससी 168

8 उपरोक्त (1, 5)

9 उपरोक्त (2)

10 उपरोक्त (1.5.8)

11 उपरोक्त (6)

12 उपरोक्त (1.5.8, 10)

13 उपरोक्त (3)

14 उपरोक्त (4)

15 (1997) 3 एससीसी 261।

16 एआईआर 1964 एससी 1419

17 (1983) 2 एससीसी 433,

18 (1859) 6 सीबीएनएस 336: 141 ईआर 486

19 1919 एसी 368: (1918–19) 10 ऑल इआर रेप० 61 (एचएल)

20 1935 एसी 532 (पीसी)

21 (1939–40) 67 आईए 222: एआईआर 1940 पीसी 105।

22 (1997) 5 एससीसी 536

23 एआईआर 1969 एससी 556

24 उपरोक्त (1.5.8, 10, 12)

25 उपरोक्त (6, 11)

26 उपरोक्त (1.5.8, 10, 12, 24)

27 इसी ज़गह पर

28 इसी ज़गह पर

29 उपरोक्त (2, 9)

30 (2004) 11 एससीसी 672

31 उपरोक्त (2, 9, 29)

32 उपरोक्त (7)

33(1970) 2 एससीआर 368

नीरज कुमार ॥

जिला न्यायाधीश– प्रवेश बिन्दु

बिहार उच्चतर ेन्यायिक सेवा

पटना बिहार